।। अबदू रो संवाद ।।
मारवाडी + हिन्दी
(१–१ साखी)

महत्वपूर्ण सुचना–रामद्वारा जलगाँव इनके ऐसे निदर्शन मे आया है की,कुछ रामस्नेही सेठ साहब राधाकिसनजी महाराज और जे.टी.चांड्क इन्होंने अर्थ की हुई वाणीजी रामद्वारा जलगाँव से लेके जाते और अपने वाणीजी का गुरु महाराज बताते वैसा पूरा आधार न लेते अपने मतसे,समजसे,अर्थ मे आपस मे बदल कर लेते तो ऐसा न करते वाणीजी ले गए हुए कोई भी संत ने आपस मे अर्थ में बदल नही करना है । कुछ भी बदल करना चाहते हो तो रामद्वारा जलगाँव से संपर्क करना बाद में बदल करना है ।

* बाणीजी हमसे जैसे चाहिए वैसी पुरी चेक नही हुअी,उसे बहुत समय लगता है। हम पुरा चेक करके फिरसे रीलोड करेंगे। इसे सालभर लगेगा। आपके समझनेके कामपुरता होवे इसलिए हमने बाणीजी पढनेके लिए लोड कर दी ।

आदि सतगुरु सुखरामजी महाराज अवधू याने त्रिगुणी माया के योग की साधना करनेवाले योगी से संवाद करते है । जिसने पत्नी को त्यागा,संसार को त्यागा,पाँचो आत्मा को तपा के रखा, कुटूंब कबीले का व्यवहार त्यागा,सोना,धन त्यागा,माता–पिता त्यागे,भाई त्यागे,घर त्यागा,गाँव त्यागा,बन में रहने लगा,विरक्ती का भेष धारण किया,स्त्री को माया समझ के निकट नही आने देता,बन मे रहकर फलफुल खाता,स्त्री को भोजन बनाने पुरता भी साथमें नही रखता , मुख पे पत्नी का नाम भी नही आने देता । गुँफा को आडा वज्र दरवाजा लगा कर रखता ताकी कोई स्त्री नही आवे और शिल को भारी तप बल से बाँध रखता । भृगूटी में ध्यान लगाता तथा संसारमें ध्यान नही आने देता,माया के सुखों की कोई आशा नही रखता । कुटूंब परिवार तथा गाँव के बस्ती को छोड्कर सुन्न जगह में बास करता तथा वहाँ नाद बजाता । इसप्रकार त्रिगुणी माया में सच्चा मानकर रचमचा रहता । सदा ब्रम्हचर्यके आचरण क्रियासे तोल तोल के करता । कंदमुळ खीण खीण खाता,स्वादीष्ट भोजनके लिये पत्नी में मन कभी नही जाणे देता । शरीरके सभी दु:ख सहन करता,बारिश,थंडीसे बचानेके शरीरपे कपडे नही रखता । तथा पासमें भी कपडे नही रखता । कभी गिरवर पे,तो कभी गुँफामें रहता,घर,झोपडी इसका रतीभर ही आसरा नही लेता । इसपर गुरु महाराजने मैं योगी कैसे हूँ,इसका ज्ञान अवधु को भिन्न भिन्न प्रकारसे दिया ।

|| अथ अबदू रो संवाद लिखंते ||

अबदू हम तोड़ी हे त्रिगुण माया || जब हम जुग मे जोगी कुवाया ||
जुग कूं छाड़ अभे पद लीया || पाँचुं घेर ज्ञान हम दीया ||१||

अबधू मैंने त्रिगुणी माया छोडी है व जोगी का विज्ञान धारण किया है । इसकारण मुझे होणकाल जगत में जोगी कहते । मैंने माया का जगत त्यागकर कालमुक्त अभय पद पाया है । मैंने विषयो में भिने हुये मेरे पाँचो आत्मा को घेरकर जोगी का विज्ञान ज्ञान दिया ।।।१।।

ज्ञान बिचार जुग सब देख्या || कूळ बोहार निरख ले पेख्या ||
तब हम छाड़ी कुळ म्रजादा || लीया जोग तज्या सब स्वादा ||२||

मैंने गुरुज्ञानसे सारा होणकाल जगत देखा । मेरे कुलका त्रिगुणी माया माता व पारब्रम्ह पिता का व्यवहार निरखा । कुल के व्यवहार में काल ओतप्रोत समाया है यह गुरुज्ञान से समझ आनेकारण मैंने कुल की मर्यादा भंग की व त्रिगुणी माया के सभी सुखोंका आनंद त्यागन कर ज्ञान–विज्ञान जोग धारण किया ।।।२।।

कुळ बोहार तज्या सब सारा || कामण कनक नही बोहारा ||
मात पिता भ्राता अर भाई || अे हम छोड़या जुग के मांही ||३||

मैंने कुल याने होणकालका व्यवहार पुरा छोड दिया । मैंने रिद्धी–सिद्धी स्त्री त्याग दि व

पर्चे–चमत्कारके कनक)व्यवहार नही रखे। माता(माया),पिता(होणकालब्रम्ह),भ्राता(ब्रम्हा, विष्णू,महादेव) और भाई(अवतार)इनके घरको याने होणकाल जगतको छोड दिया ।।।३।।

जुग कुं छोड़ निरंतर होई ।। अेसा ग्यान बिचारे कोई ।।
के जोगी में त्यागी माया ।। तब में पूरा जोगी कुवाया ।।४।।

ऐसे मैं मायाके जगत को त्यागकर जगत से न्यारा हुवा । जोगी ऐसी माया मैंने त्यागी तब मै होणकाल जगत में पुरा जोगी कहलाया ।।।४।।

माया त्याग रहूं बन जाई ।। तो त्यागी में जुग के मांई ।।
बन मे रहूं गाम नही जाऊं ।। अेसा निज मे त्यागी कुवाऊं ।।५।।

मैं माया का त्याग करके बनमें याने जहाँ माया नही ऐसे दसवेद्वारमें जाकर रहता हूँ । मैं

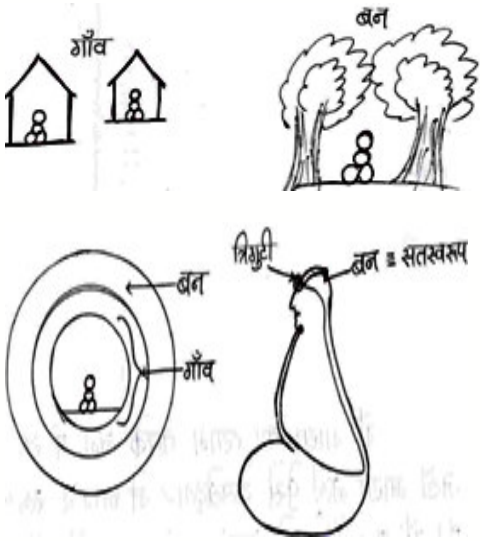

बन में याने ब्रम्हांड्में रहता हूँ । गाँवमें याने माया के तीन लोक चौदा भवन में नही जाता हूँ । ऐसा मैं त्रिगुणी माया को त्यागनेवाला निजत्यागी कहलाता हूँ । जैसे जगतका जोगी माया त्यागकर बनमें रहता है ऐसा मैं भी त्रिगुणी मायाको त्यागकर दसवेद्वारमें सतस्वरुप बनमें रहता हूँ । जैसे जगतका जोगी बनमें रहता व गाँवमें नही जाता इसीप्रकार मैं भी सतस्वरुप बन में ही सदा रहता व त्रिगुणी मायाके गाँव कभी नही जाता । ऐसा मैं त्रिगुणी माया त्यागनेवाला निजत्यागी याने आदी–अनादी वाला माया त्यागनेवाला हूँ ।।।५।।

बिरकत सांग बणाऊं सोई ।। माया हाथ गहूं नही कोई ।।
बन मे रहूं फूल फळ खाऊं ।। माया निकट रति नही लाऊं ।।६।।

जैसे जगत का जोगी विरक्ती का भेष पहनता है वैसे मैंने भी त्रिगुणी माया त्यागी व विज्ञान विरक्ती का भेष धारण किया हूँ । जैसे जगत का जोगी माया याने धन को हाथ नही लगाता वैसे मैं भी त्रिगुणी माया को याने पर्चे–चमत्कार को जरासा भी निकट नही आने देता । जैसे जगत का जोगी बनमें रहकर फल–फुल खाता वैसे मैं भी सतस्वरुप ब्रम्ह बन में रहकर विज्ञान ज्ञानरुपी फल–फुल खाता । जैसे जगत का जोगी स्त्री को नजदिक नही आने देता वैसे मैं भी कुबुद्धी स्त्री को जरासा भी निकट आने नही देता ।।।६।।

मुख सूं माया नाव न बोलूं ।। सदा निरंतर करणी तोलूं ।।
कंद मुळ में खिण खिण खाऊं ।। माया मन कबू नही लाऊं ।।७।।

जैसे जगत का जोगी मुखसे धन,महल,राज,स्त्री के नाम नही आने देता वैसे मैं भी त्रिगुणी माया से उत्पन्न हुए वे ब्रम्हा,विष्णू,महादेव,अवतार आदी मायावी वस्तुएँ देनेवाले देवताओं

का नाम मुखसे नही उच्चारता । जैसे जगतका जोगी अपना मन धन,माल,स्त्री,राज में नही अटक रहा व विरक्ती में पक्का बना है ना यह तोलते रहता वैसा मैं भी त्रिगुणी मायामें नही अटक रहा व सतस्वरुप वैराग्य विज्ञान में पक्का हूँ,यह तोलते रहता । जैसे बन का जोगी कंद-मुलीयाँ खोद-खोदकर खाता व स्वादिष्ट भोजन के लिये पत्नी में मन कभी नही जाने देता वैसे ही मैं प्रालब्ध में जो सुख-दु:ख के कर्म है वे खोद-खोदकर खाता व पाँचो आत्मा के सुख के लिये त्रिगुणी माया में मन कभी नही जाने देता ।।।७।।

दू:ख सुख सेहूं सबे सिर सारा ।। माया नांव नही करूं बिचारा ।।
कपड़ा पास न राखूं कोई ।। माया त्याग रेहूं युं होई ।।८।।

जैसे जगत के जोगीको बनमें स्त्री,घर,कुल त्यागने कारण सुख-दु:ख सहने पड्ते वैसे ही मुझे भी त्रिगुणी माया त्यागने कारण होणकालके सुख-दु:ख सरपर सहने पड्ते । जैसे जगत का जोगी बनमें होनेवाले दु:खसे बचनेके लिये व मायाके सुख पानेके लिये मायाके वस्तुओं का बिचार नही करता वैसे ही मैं भी होणकालके दु:खोसे बचने के लिये तथा त्रिगुणी मायाके सुख पानेके लिये त्रिगुणी मायाकी भक्तीयाँ मनमें नही लाता । जैसे जगतका जोगी धुप,थंडी से बचनेके लिये नजदिक एक भी कपडा नही रखता उसीप्रकार मैं भी मेरे पास एक भी रिद्धी-सिद्धी नही रखता । जैसे जगतका जोगी कुटूंब,परीवार,धन, राज,यह माया त्यागन करके रहता वैसे मैं भी त्रिगुणी माया त्यागन करके रहता ।।।८।।

माया नाम धरावे सोई ।। रत्ति टांक नही राखूं कोई ।।
गिर्वर बास किया मे जाई ।। गुफा निरंतर बेठा माई ।।९।।

जैसे जगतका जोगी मायाकी वस्तुये रतीभर या टंकभर भी नही रखता वैसे भी मैं त्रिगुणी माया से उपजे हुये नाम रतीभर या टंकभर भी नही रखता । जैसे जगतका जोगी पहाड पे जाकर गुँफा में निरंतर बैठे रहता वैसा मैं भी दसवेद्वार के गिरवरके गुँफामें निरंतर बैठे रहता । ।।९।।

आडा बजड कपाट जड़ाया ।। सीळ अपर बळ लेटे राया ।।
ईस बिध बास किया में जाई ।। माया तब क्हो क्हाँ रहाई ।।१०।।

जैसे जगतका जोगी गुँफा को वज्रका दरवाजा आडे लगाता ऐसा मैं भी गिगन में वज्र दरवाजा आडे लगाता । जैसे जगतका जोगी अपने शिलको मजबूत रखता वैसे मैं भी ब्रम्ह विज्ञानरुपी शिल को मजबूत रखता हूँ । ब्रम्हविज्ञान के सिवा त्रिगुणी माया को नजदिक नही आने देता । जैसे माया का जोगी नियम से रहता वैसे मैं भी नियम से रहता । जैसे जगत के जोगी के पास स्त्री रुपी माया नही पहूँचती वैसे ही मेरे पास भी त्रिगुणी माया नही पहूँचती ।।।१०।।

लागे ध्यान समाधी मोई ।। बाहिर जुग की गम न होई ।।
त्यागी माया बन मध बासा ।। मेरे ओर नही कुछ आसा ।।११।।

जैसे जगत के जोगी को भृगूटी की ध्यान समाधीमें जाने पे बाहरके जगत का कुछ भी ध्यान नही रहता वैसे ही मुझे अखंडीत विज्ञान ध्यान समाधी लगने के कारण होणकालका जरासा भी ध्यान नही रहता । जैसे जगत का योगी सभी प्रकार की माया त्यागकर बनमें बास करता व उसे मायाके सुखो की कोई आशा नही रहती इसीप्रकार मैंने त्रिगुणी माया को त्यागन कर निरंजन बनमें बास किया हूँ व मुझे त्रिगुणी मायाके सुखो की कोई आशा नही रही है । ।।११।।

अेसा अबदू जोग कमाऊं ।। माया छोड सुन्न मे जाऊं ।।
सुन्न मे बास करूं मे जाई ।। अनहद नाद बजाऊं माई ।।१२।।

इसप्रकार से हे अबदू,मैंने पुरा जोग कमाया हूँ व त्रिगुणी माया छोड सतस्वरुप सुन्न में गया हूँ व वहाँ बास कर रहाँ हूँ और शुन्य में अनहद ध्वनी सुनते रहता ।।।१२।।

अबदू हम जोगी नही जंवरे सारूं ।। निर्भे बास किया हम बारू ।।
जब लग माया जो संग राखे ।। तब लग जंवरो दावा भाखे ।।१३।।

हे अबदू,मैं ऐसा योगी हुँ कि मैं यमके काबू में नही रहा । मैंने होनकाल के परे जो देश है, जहाँ काल पहूँचता नही ऐसे भयरहीत देशमें निवास किया हूँ । अरे अबदू,जब तक जो कोई अपने संग त्रिगुणी मायाको रखेगा तबतक यम उसके उपर अपना दावा बोलेगा ।।।१३।।

अबदू माया त्याग निरंतर होई ।। जंवरे जोर न लागे कोई ।।
तीन लोक माया बिस्तारा ।। वाहाँ लग जंवरे जाळ पसारा ।।१४।।

त्रिगुणी माया को त्यागकर जो अलग हो जाता है ऐसे हंस उपर यम का जोर लगता नही । अरे अबदू त्रिगुणी माया ने ३ लोक १४ भवन में खुदका विस्तार कर घेर रखा है । इसकारण ३ लोक १४ भवन में यम का जाल पसरा हुवा है ।।।१४।।

अबदू जम सूं जीत सके नही कोई ।। बिन माया त्याग्यां बिन सोई ।।
माया त्यागे तब डर भागे ।। ने:चळ हुवां सुरत सुन्न लगे ।।१५।।

त्रिगुणी माया का त्यागन किये बिना कोई भी यम से जीत नही सकता । अरे अबधु,माया का त्याग करोगे तभी यम का डर भागेगा । त्रिगुणी माया का त्यागन करने पे हंस निश्चल हो जायेगा जब यह सुरत शुन्य में जाकर लगेगी ।।।१५।।

अबदू माया संग ने:चळ को माई ।। चलते पवन नीर थिर नाई ।।
माया घण दिष्ट कहाई ।। इण संग प्राण बचे नही भाई ।।१६।।

अरे अबदू,मायाके संग निश्चल कौन है?वह मुझे बतावो?जब हवा चलती है । तब स्थीर पानी स्थिर होकर नही रहता । हवा चलती है तब पानी में लहरे आती है,वैसे ही माया के संग हंस में पाँचो वासना की तरंग आती रहती है । त्रिगुणी माया यह दृष्ट घण के समान है । दृष्ट घण यह जहरेला प्राणी होता है । ऐसे दृष्ट जहरेले घण के संगती से प्राण नही

बचता है । वैसे ही माया के संग में प्राण यम से नही बचता है ।।।१६।।

अबदू माया अंग पत्थर को होई ।। ओ सिर संमद तिरे नही कोई ।।
माया पत्थर आ छिटकावे ।। काट न्याव भे पार लंघावे ।।१७।।

माया का स्वभाव पत्थर के जैसा है । जैसे पत्थर की नाव से कोई समुद्र से तैर नही सकता वैसे ही त्रिगुणी माया का संग करके कोई भवसागर से तर नही सकता । माया यह पत्थर के नाव के जैसी है,इसे यही छोड देना चाहिये । और लकडी की नाव का उपयोग लेना चाहीये । वह लकडी की नौका समुद्र से पार लंघा देगी ।।।१७।।

अबदू माया म्रग जळ नीर कहाई ।। धावत धावत रहया हराई ।।
धावत धावत बोहो दिन धाया ।। पच पच मुवा हात नही आया ।।
मृग जळ को मृग थ्हा न पावे ।। माया माया केहे यूं जावे ।।१८।।

माया यह मृग जल के समान है । मृग जल यह मृगको प्यास बुझानेवाला सच्चा जल दिखता है । कडे धुपके दिन रहते है । चारो ओर रेतीला प्रदेश होता है । मृगको कडी प्यास लगी रहती । प्यास पानी से बुझती यह हिरण को समझते रहता । हिरण को चारो तरफ कुछ दुरी पे यह जल दिखते रहता । इसलिये पानी पीने के लिये उस दुरी पे दिखनेवाले जलके और दौडता । जैसे जैसे हिरण उसकी तरफ दौडता है वैसे वैसे पानी आगे आगे दिखाई देने लगता है । पानीके लिये हिरण दौंड दौंड कर थक जाता है । थक जाने के बावजूद भी जल मिलेगा और प्यास बुझेगी इस समझ से बहुत दिनोंतक दौडते रहता है । अन्तीम मर जाता है,फिर भी अन्तीम तक जल हाथ में नही आता है और प्यासा का प्यासा रह जाता है । जैसे मृग को अन्तीमतक जल का थाह नही मिलता है ।।।१८।।

अबदू गारे कीच धुपे नही कोई ।। माया संग को निर्मळ होई ।।
ऊलटा मेल जमे फिर मांई ।। गारे कीच धुपे कुछ नांई ।।१९।।

अरे अबदू,शरीर पे गारा याने किचड लगनेपर किचड से गारा नही धोये जाता उलटा लगे हुये गारेका गारे से साफ करनेपर उलट अधीक मैल जमता । उसके बजाय निर्मल पानी से धोने पे किचड धोया जाता और उसे धोने में समय भी नही लगता । ऐसे ही माया को त्यागने के लिये माया के योग,जप,तप,कर्मकांड,व्रत,एकादशी आदी करने से माया त्यागे नही जायेगी बल्की मायाके नये कर्म हंस के उपर चढेंगे और काल हंस को अधीक जखडेगा ।।।१९।।

अबदू निर्मळ जळ सूं धोवे कीचा ।। धुपतां बार न लागे बीचा ।।
धोवत धोवत निर्मळ होई ।। माया त्याग रहयो युं कोई ।।२०।।

अरे अबदू,शरीरपे लगा हुवा किचड निर्मल पानीसे धोने पे सभी किचड धोया जाता और उस धोने पे समय भी लगता नही । ऐसेही हंस के साथ किचड के समान माया लगी है ।

इस माया को याने ५ आत्मा और मन धोने के लिये निर्मल(ने:अंछर)से धोवोगे तो वह सहज से निकल जायेंगे और उस ५आत्मा,मन को हंससे अलग करनेको समय भी नही लगेगा । ऐसे वह निर्मल हो जायेगा और ऐसे माया का त्याग करके कोई इस होनकाल में रहेगा क्या? ।।२०।।

अबदू माया के संग ओ दु:ख पावे ।। उलटा काट लोहो कूं खावे ।।
छीजत छीजत बोहो छी जाया ।। माया संग नही निर्मळ कवाया ।।२१।।

जैसे लोहे को जंग लगता है,वह जंग लोहे को खाता है,खाते-खाते वह लोहा क्षीण हो जाता है । बहोत दिनोतक खाते रहणे कारण लोहे का अस्तीत्व नही रहता,वह मीट्टी में पुरा मीट गया रहता । जैसे वह लोहा जंगके कारण बढता तो नही बल्की पुरा मीट जाता है। ।।२१।।

अबदू ले लोहा माटी मिल जावे ।। जे वो काट घणा दिन खावे ।।
नीबी धुळे बधे कुछ नाही ।। युं माया संग प्राणी कुवाई ।।२२।।

यह लोहे का जंग बहोत दिनोंतक खाते रहने के कारण लोहे का अस्तीत्व नही रहता । वह मिट्टी में पुरा मिल जाता है । जैसे लोहा जंग के कारण बढता तो नही बल्की पुरा मीट जाता है । ऐसे ही हंस के साथ कर्मरुपी जंग होने के कारण वह कर्मरुपी जंग हंस को काल के मुख में रखता है ।।।२२।।

अबदू निर्मळ जळ सो निर्मळ क्हाई ।। माया कीच मिले तब माई ।।
पंछी जीव नही पीवे कोई ।। उलटी जळ की निंद्या होई ।।२३।।

अरे अबदू निर्मल जल को निर्मल कहते है । किचड मिले हुये जल को निर्मल जल नही कहते है । ऐसे गंधे पानी को पंछी या कोई जीव पिता नही उलटा पानी खराब है ऐसी पानी की निंदा करते है ।।।२३।।

अबदू माया संग कबु नही कीजे ।। सदा निरंतर अेसे रीजे ।।
माया संग चले नई कोई ।। रूई आग लपेटी होई ।।२४ ।।

अरे अबदू,त्रिगुणी मायाका संग कभी नही करना । सदा मायासे अलग होकर रहना । जैसे रुई लपेटी हुई आगके लपेटमें टनो रुई जल के भस्म हो जाती वैसे ही माया के संग प्राण जलकर भस्म हो जाता ।।।२४।।

अबदू माया सब ले जुग भ्रमावे ।। ऊपजे खपे पार नही पावे ।।
माया के संग तिरहे कोई ।। जुग मे लोय रहे नही सोई ।।२५।।

अरे अबदू,यह माया सारे जगत को झुठे सुख बताकर भ्रमित करती है । इसकारण जगत माया में अटक जाता है,उपजता है,खपता है परंतू माया के संग से भवसागर पार नही पाता । अगर माया से तिरता था तो इस संसार में लोक कोई भी नही रहा होता ।।।२५।।

अबदू जळमे फेस न कोरा क्रावे ।। या बिध मन मानण नही आवे ।।

माया संग्रह बंध्यो सोई ।। मुख सूं के में न्यारा होई ।।२६।।

अरे अबधू,पानी में बैठकर कोरा कौन रहेगा?इसीप्रकार जिसने माया संग्रह की वे माया में बंधे हुये है । वे मुख से कहते है की मैं माया से अलग हूँ । यह अलग हूँ यह कहना मेरा मन मानने को तयार नही है ।।।२६।।

अबदू माया अंग अग्नी को कुवावे ।। घ्रित सिर दे थीणो क्युं रहावे ।।
माया संग ने:चळ नई कोई ।। मुख सूं बात बणावो सोई ।।२७।।

अरे अबदू मायाका अंग अग्नी का कहते है । ऐसे अग्नी पे रखा हूवा घी थीजा कैसे रहेगा? इसीप्रकार माया के संग निश्चल कोई कैसे रहेगा? कोई कहता है मैं निश्चल हूँ तो यह मुख से बताने की बात है ।।।२७।।

अबदू काजळ का घर कीना ।। माहे डेरा निस दिन दीना ।।
कब लग जतन करे नर कोई ।। दिन दिन बस्तर काळा होई ।।२८।।

अरे अबदू,काजल का घर बनाया और उसमें रात-दिन डेरा डालकर रहता है । ऐसे घर में वस्त्रोंको डाग नही लगना चाहिये,इसलिये कितना भी वस्त्रोंका जतन किया तो भी दिन-ब-दिन वस्त्र काले होते जायेगे । इसीप्रकार मायाके संग मन मायामें गये बिना रहता नही ।२८।

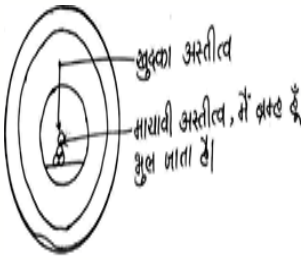

अबदू माया संग मन माने नाही ।। ज्यूं सूरज संग बादळ क्राही ।।
दिन दिन तेज उजास मिटावे ।। युं माया संग प्राण कुवावे ।।२९।।

अरे अबदू,जैसे सुरज का तेज बादल खा जाता है,इसीप्रकार माया के संग प्राण खुदका तेज गमा देता है और मायावी हो जाता है ।।।२९।।

हो स्वामीजी काळा बादळ कुवावे ।। तब ही मेहा बोहो बरसावे ।।
धोळा बादळ डांफर होई ।। तिण मे छाट पड़े नही कोई ।।३०।।

अबधू त्रिगुणी माया में क्या दु:ख है यह समझ नही पाता । उसे कुटूंब परिवार,व्यवहार इसमें दु:ख दिखते और त्रिगुणी माया में सुख दिखते । इसकारण बादल सुरज को खाता यह वह समझता नही । उलटा काले बादल आते है,तब बहुत पानी गिराते तथा सुर्य के आडे सफेद बादल रहेगे तो पानी का एक छीटा भी नही पड्ता ऐसी सोच बनाकर आदी सतगुरु सुखरामजी महाराज के साथ संवाद करता ।।।३०।।

हे अबदू तेली तिल कूं पीले भाई ।। पेरण कपड़ा दूर रहाई ।।
राखत राखत मेला होई ।। दिन दिन चीगट लागे सोई ।।३१।।

आदि सतगुरु सुखरामजी महाराज शान्ती से आगे समझाते की,अरे अबदू तेली तील को पिल कर तेल निकालता है तब शरीरपर पहने हुये कपडे दुर रखता कपडे दुर रखते-रखते उस तेली के कपडे तेलकट हो जाते । दिन प्रतिदिन उस सारे कपडे को तेल का चिकट लग जाता है । ।।३१।।

हो स्वामीजी चीगट को कुछ बिगड़े नाई ।। कपड़ा वे कुवावे कुवाई ।।
फाट फूट खांख मिल जावे ।। तब कहो चीगट कहाँ रहावे ।।३२।।

इसपर भी अबदू मूल बात आदि सतगुरु सुखरामजी महाराज क्या कहते है वह समझता नही और सहज जबाब देता की,स्वामीजी,कपडे चिगट हो गये तो उससे उस चिगट कपडो का क्या बिघडा ? जिस कपडो को चिगट डाग नही लगा उसे भी कपडा ही कहते है और तेल से चिगट डाग लगा उसे भी कपडा ही कहते है । ये दोनो तेल से चिगट हो गये हुये और चिगट न हुये ये दोनो भी कपडे फाट-फूटकर मिट्टी में मिल जायेंगे तब इन कपडोंका चिगटपणा कहाँ रहा यह बताओ ? ।।३२।।

हे अबदू माया संग कबू नही लहिये ।। ज्ञान सुणे सुण ने:चळ रहिये ।।
माया अंग किसबण का होई ।। इण संग दाद न पावे कोई ।।३३।।

अरे अबधू माया का संग कभी मत कर ग्यान सुनकर निश्चल रह । इस माया का स्वभाव वेश्या के जैसा है । इस वेश्या का संग करनेवाले को दाद कही भी नही मिलती है ।(वेसे ही इस माया के संग से दाद कही भी नही लगती है ।) ।।३३।।

हो स्वामीजी किसबण कें संग जो कोई जावे । मन की आसा जाय बुझावे ।।
वा उन को कुछ लेवे नाही ।। आवे जेसा पाछा जाई ।।३४।।

हाँ स्वामीजी,कोई वेश्या का संग करने जाता है,तो वह वहाँ जाकर मनकी आशा बुझाता है । वह वेश्या उसका कुछ लेती नही है ।(वह अपनी आशा बुझाकर)जैसे आता है,वैसे ही वापस चला जाता है ।।।३४।।

हो स्वामीजी माया मन की बास गमावे ।। भीड़ पड़या मे आडी आवे ।।
माया माण लगावे सोई ।। जो नर पल्ले माया होई ।।३५।।

अबदू आदि सतगुरु सुखरामजी महाराज को कहता है की,माया मन की आशा मिटाती है और कोई संकट पडनेपर या कोई काम पडनेपर काम में आती है । इस माया का उपयोग याने उपयोग लेने में खर्च करना चाहिये । जिसके पल्ले में माया है,मतलब रुपये-पैसे है उन सभी ने उपयोग लेने में खर्च कर देना चाहिये ।।।३५।।

हे अबदू आ माया देणी नही आवे ।। अपनी कर बोहो गांठ घुळावे ।।
जो कुछ बिगड़े इनके माई ।। रोवत रोवत सब दिन जाई ।।३६।।

आदि सतगुरु सुखरामजी महाराज कहते है की,हे अबदू यह माया दिये जाती नही,इस माया को अपनी बनाकर बहुत यज्ञसे अपनी गाँठमे बांधकर रखते है । किसी कारण जमा की हुई माया कम हो गई या खतम् हो गई उस माया के लिये रोते-रोते सारे दिन व्यतीत होते है । ।।३६।।

हे अबदू अपणो गुण मेले नही कोई ।। देवत दाणु सबही होई ।।
यूं माया हे सब मोहो पसारा ।। जाणेगा कोई जाणण हारा ।।३७।।

जैसे देव हो या राक्षस यह कोई भी अपना गुण नही छोड्ते,वैसे ही यह माया अपना मोह का गुण नही छोड्ती । इस माया के मोह के पसारे को कोई एखाद ही जाणणेवाला होगा वही जानेगा ।।।३७।।

हो स्वामीजी जाणे सो कुछ डरहे नाही ।। अपणी नार पुरूष घर माही ।।
आ माया हे हरि की दासी ।। हरजन की नित करे खवासी ।।३८।।

हाँ स्वामीजी जो जानेगा कि यह माया मोहीत कर लेती,वह डरेगा नही । वह सावधान रहेगा । यह माया ब्रम्ह की स्त्री है और यह जिस के घर में है उस घर में माया का पती ब्रम्ह भक्ती घर में होने से माया का क्या भय है तथा उसका पती घर में होनेकारण वह दुजे को मोहीत ही नही करेगी ।।।३८।।

हरजन कूं कुछ डर हे नाही ।। जिन के शिर सम्रथ हे साई ।।
सांई की आद सरीरी ।। या ने: छे हे जना की चेरी ।।३९।।

यह माया हरी की दासी है और हरीजन(भक्त)है । उनकी सेवा–चाकरी यह माया नित्य करते रहती है । इसकारण हरीजन को इस माया का कुछ भी डर नही है । जिस संत के सिर उपर समर्थ स्वामी मतलब ब्रम्ह है । उसको माया का बिलकुल भय नही है । साईकी यह अर्धशरीरी है तथा भक्तो की निश्चितही दासी है ।।।३९।।

हे अबदू अेसा चिरत बतावे आई ।। हरजन कुं हर देह बिसराई ।।
पेला होय कर अेसी आवे ।। बस हुंवा पीछे छिटकावे ।।४०।।

आदि सतगुरु सुखरामजी महाराज अबधू को कहते है की यह माया हरिजन के पास आकर ऐसे भारी चरीत्र बताती है की हरीजन को हर को भी भूला देती है । पहले तो यह माया दासी बनकर आती हैं फिर वह भक्त वश हो जानेपर उस भक्त को यह माया झीड्का देती है । ।।४०।।

हे अबदू पेली आदर बोहो बिध कर हे । हंस हंस कर पाँवा तले धर हे ।।
जब लग नही बिप ले होई ।। तब लग यारे करे हे सोई ।।
जब ही जन माया सुख पावे ।। निरआदर तब ही कर जावे ।।४१।।

अरे अबदू,यह माया भक्तका बहुत तरहसे आदर करती है । इसकारण वह भक्त हँस–हँसकर मायाके पैरोंका दास बनता है । जबतक वह भक्त मायाके वशमे नही होता है तबतक यह माया संतोके मनके जैसे सभी कबुल करती है परंतु जब वह संत मायाके सुखके वश हो जाता है, माया के सुख के बिना रह नही सकता है तब वही माया भक्तका निरादर कर के जाती है । ।।४१।।

हो स्वामीजी आदर घट सी तब क्या बटसी ।। वे तो बेका वेही रेसी सोई ।।
तज उलटी होय जावे माया ।। तब ही पूरण होई ।।४२।।

उसपर अबदू कहता है,माया संतो का निरादर कर के जाने पे संतो का आदर घटा तो

संतो का क्या बिघडा? वे संत तो जैसे है वे वैसे के वैसे रह जायेगे । उलट जब माया संत को छोड्कर जायेगी तब संत पुरे संत हो जायेगे ।।।४२।।

हो स्वामीजी माया तजिया लारे आवे ।। पीछा मेले नाही ।।
आपी प्रहरिया पच पच जावे ।। तब दावा नही मांही ।।४३।।

हो स्वामीजी संत जब माया का त्याग करते है,तब यह माया संतो के पिछे–पिछे आती है । तब उस माया को पलटावो मत,माया को साथ में आने दो । उसका परित्याग करने से वह माया अपने मन से पच–पचकर वापस चली जाती है। तब इसमें माया का संत पे दावा नही रहता है ।।।४३।।

हो स्वामीजी दीया लीया जे कोई जावे ।। तो निर भागन रहे कोई ।।
ज्यां त्यां आंण पहूँते माया ।। तब ही दुखिया होई ।।४४।।

हे स्वामीजी माया आयी और उस माया को किसी दुसरे को देते–लेते रहे तो संसार में भाग्यहिन कोई भी नही रहेगा ।।।४४।।

हे अबदू जांहाँ नही सीत धाम नही छाया ।। ज्यांहाँ हम देव निरंजन पाया ।।
सिव सगती मन माया नांई ।। ज्यांहाँ हम मिले निरंजण सांई ।।४५।।

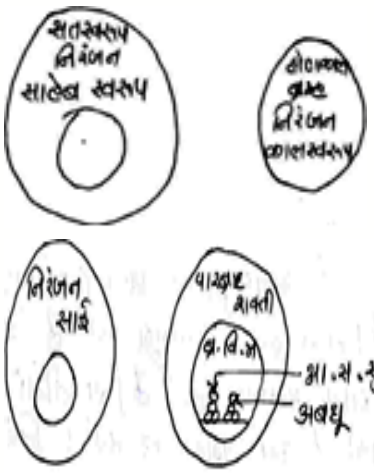

हे अबदू,जहाँ शित(सतोगुण)नही है । धाम याने तमोगुण नही है और छाया याने रजोगुण नही है । ये तीनो गुण नही है उस जगह पर हमने निरंजन देव को पाया है ।

१ होणकालब्रम्ह (कालस्वरुप)
२ सतस्वरुप निरंजन(साहेब स्वरुप)

दोनों को भी इंद्रिये नही परंतु जहाँ शिवब्रम्ह,शक्ती,पारब्रम्ह, इच्छा, मन,५ आत्मा ये कुछ भी नही है । वह सतस्वरुपी निरंजन को पाया है । जो सब को सुख देता है । ऐसे स्वामी को मिले । ।।४५।।

हो स्वामीजी जां हे सीत धाम हे छाया ।। जां हे सिव सक्ति मन काया ।।
माया बिना किसी बिध जावे ।। किसमे मिले क्या नाव धरावे ।।४६।।

हो स्वामीजी जहाँ शीत(सतोगुण)नही है । धाम तमोगुण नही है तथा छाया याने रजोगुण नही हैं । जहाँ शिवब्रम्ह मतलब पारब्रम्ह नही है,जहाँ शक्ती याने इच्छा नही है जहाँ मन ५ आत्माये नही है । वहाँ माया के बिना किस विधीसे जाया जायेगा? और वहाँ किससे मिलकर क्या नाम रखा जायेगा ? ।।४६।।

अबदू मन निजमन होय जावे ।। तब ले माया सब छिटकावे ।।
हंसा पलट प्रमहंस होई ।। या बिध नाय कहावे दोई ।।४७।।

हे अबदू इस मन का निजमन हो जाता । जो माया में लगा हुवा मन था वह सतस्वरुप में

लग जाता । तब निजमन( )ये सारी त्रिगुणी माया झिड्क देता । फिर उस हंसका पलटकर परमहंस हो जाता । इसतरहसे दो नही कहलाता?इसतरहसे जीव व ब्रम्ह दो नही कहलायेगा । ।।४७।।

हो स्वामीजी धरणो माया करणो माया ।। उलट पलट सोई माया ।।
अे सब भेद तबे सिर स्वामी ।। माया मज बताया ।।४८।।

हे स्वामीजी शरीर धारण करना यह माया ही है और क्रिया करणी है वह भी माया ही है और उलटती है और पलटती है यह सब माया है । यह सभी भेद आयेगा तब इसके उपर स्वामी है वह भी माया में ही बताया है ।।।४८।।

हे अबदू माया नांव मिटावे ।। तब जन चल चोथे पद जावे ।।
तीन लोक मे तिरगुण माया ।। चोथे पद निरंजन पाया ।।४९।।

हे अबदू माया नाव मिटावे तब जन चौथे पद में जायेंगे । ये तीन लोगों में(स्वर्ग,मृत्यू, पातालमें) त्रिगुणी माया ब्रम्हा रजोगुण,विष्णू सतोगुण और महेश तमोगुण इन्हे उत्पन्न करनेवाली त्रिगुणी माया है । इन्होंने ही त्रिलोक की रचना की है । इनसे आगे जो है वह चौथा पद है । वहाँ हमे निरंजन मिले है ।।।४९।।

हो स्वामीजी त्रिगुण माया त्रिगुण काया ।। इण मध बासा लीया ।।
इण बिन कहा करे को स्वामी ।। जीव बिना क्या जीया ।।५०।।

हो स्वामीजी,त्रिगुण याने ब्रम्हा,विष्णू,महादेव ये त्रिगुणी माया के ही है याने इनकी उपज त्रिगुणी माया से है और उस त्रिगुण से ही शरीर बने है और उस शरीर में हम रहते ही । इस शरीर के बिना कोई क्या करेगा ? और शरीर जीव के बिना जिवीत रहेगा क्या ? ।।५०।।

हे अबदू जीव जांहाँ लग जोखा भारी ।। माया संगम होई ।।
जम की त्रास रहे शिर ऊपर ।। बच न सक्के कोई ।।५१।।

आदि सतगुरु सुखरामजी महाराज कहते है कि,हे अबदू जब तक जीव है याने इस जीव के साथ ५ आत्मा है तब तक बहुत भारी जोखिम है । इस जीव के साथ जो ५ आत्मा है यह माया और त्रिगुणी माया का संग हो जाता है और जब तक यह जीव त्रिगुणी माया का संग करेगा तब तक इससे कर्म होते रहेंगे और कर्म के कारण जीवके सिरपर यमका त्रास रहेगा । उस त्रास से कोई भी नही बचेगा ।।।५१।।

हो स्वामीजी माया मर हे माया गिर हे ।। माया जन्म धरावे ।।
माया बिना कहा को कर हे ।। सो मोय भेद बतावे ।।५२।।

हे स्वामीजी माया ही मरती है और माया ही गिरती है और माया ही जन्म धारण करती है । माया के बिना कोई भी क्या करेगा ? यह भेद मुझे बताईये ।।।५२।।

बस्ती माया बन भी माया ।। माया गिरवर होई ।।

माया बिना कहां पग धर हो ।। भेद बतावो मोई ।।५३।।

बस्ती है वह भी माया है और बन यह भी माया है और कोई पहाडेपर जाकर रहेगा तो वह भी माया ही है । माया के बिना पैर ही कहाँ रखोगे ? इसका भेद मुझे बताईये ।।।५३।।

बोले माया चाले माया ।। ध्यान धरे सो माया ।।
क्रणी कर्म बिचारे स्वामी ।। सब माया मज आया ।।५४।।

बोलते वह भी माया और चलता वह भी माया तथा ध्यान करता है वह भी माया का ही है । कोई करनी करते है और कर्म करनेका विचार करते है वह भी माया है । हे स्वामीजी ये तो सभी माया ही है ।।।५४।।

हे अबदू जनम धरे ज्हां लग धोका ।। सच्चा नही होई ।।
देतां देतां सब दे चूके ।। तब खत फाटे सोई ।।५५।।

आदि सतगुरु सुखरामजी महाराज कहते है,हे अबदू जब तक जनम धारण करते रहेगा तब तक धोका रहेगा ऐसे धोकेमे रहना सच्चा नही है । जैसे अपने उपरका कर्ज है वह देने देते सभी कर्ज दे देंगे तभी दस्ताऐवज फटेंगे । बिना कर्ज दिये दस्ताऐवज कभी नही फटेंगे ।।।५५।।

अबदू त्यागत त्यागत सब ही त्यागे ।। जो त्यागण की धारे ।।
बिन दीया बिन क्यूं कर चूके ।। किस बिध करज उतारे ।।५६।।

हे अबधू माया का त्यागन करने का मन में धार लिया तो त्याग करते-करते सभी माया त्यागे जायेगी । बिना त्यागे वह माया कैसे त्यागे जायेगी । जैसे कर्ज बिना दिया कैसे चुकता होगा और कौन से विधी से कर्ज उतारा जायेगा ।।।५६।।

हो स्वामीजी फिरता फिरता बो फिर थाको ।। मार मांस नही खावे ।।
यूं माया हाथा कर ठेले ।। सेजा रचा क्रावे ।।५७।।

हो स्वामीजी अपने उपर जिसका कर्ज है वह माँगने के लिये फिरते-फिरते बहोत दिनोंतक फिरेगा और फिरते-फिरते स्वयंम ही थक जायेगा । उसका देना हमने नही दिया तो वह हमे मारकर हमारा मांस तो नही खायेगा । ऐसी तरह माया को हाथों से बारबार ढकलने पर सहज ही वह हमे छोड देगी ।।।५७।।

हे अबदू या बिध बात मन नही आवे ।। बिन दीया किम चूके ।।
त्याग्यां बिना नही बल होवे ।। मेल धोवण क्यूँ ढूके ।।५८।।

हे अबदू इस तरह ही बाते मेरे मन को अच्छी नही लगती । कर्ज तो देने से ही चुकता होता? बिना दिया कैसे चुकता होगा । व कर्ज दिये बिना कर्जमें अटका हुवा मनुष्य बलवान नही होता । सदा डर में रहेगा ।।।५८।।

हो स्वामीजी डर हे सो तो छिपति फिर हे ।। चवडे कबु न आवे ।।
जब तब दाव पडेगो स्वामी ।। दूणी शिरे भुगतावे ।।५९।।

हो स्वामीजी,जो डरेगा वह तो छुपता फिरेगा व जो डरता वह बाहर कभी नही आयेगा । जब कभी कर्जवाले का डाव पडेगा तब वह कर्जवाला उसे दुगना भुगतायेगा ।।।५९।।

हे अबदू आगम दावा सब ही देहे ।। नवा फेर नही कर हे ।।
सेज बिरत मे सुख दुख सारा ।। भुगतर दूरा धर हे ।।६०।।

अबदू पहले के जो देने है वह सभी दे देते है याने कि तुमने इस मनुष्य देह के साथ जितने भी सुख-दु:ख लाये है वह सभी सहज में भोग लो । और पुन: नया देना नही करो याने जिनसे पुन: नये कर्म नही बनेंगे ऐसी भक्ती को तुम धारण करो ।।।६०।।

हो स्वामीजी लुंकियां छिपीयां बचे न कोई ।। च्यार दिना का सारा ।।
ने: चे आंण मिलेगा चोड़े ।। तब नहीं छुटण हारा ।।६१।।

हे स्वामीजी,लपने और छिपने से कोई नही बचेगा । (लपना-छिपना) चार दिन का सहारा (आसरा)है । निश्चित ही कभी ना कभी,स्पष्ट रूपसे बाहर आकर पकड़ा जायेगा । तब फिर आगे नही छूटेगा । (लुक-छुपकर रहने से नही छूटेगा । कभी ना कभी हाथों में आयेगा,तब फिर नही छूटेगा ।) ।। ६१ ।।

हे अबदू वे त्रिगुण के निरगुण रेणा ।। त्रिगुण मे सब होई ।।
त्रिगुण छोड चल्या पद चोथे ।। त्यां नही केणी कोई ।।६२।।

हे अबदू,तूम त्रिगुण में रहो या निर्गुण में रहो । त्रिगुण याने ३ लोक १४ भवन और निर्गुण याने ३ ब्रम्हके १३ लोक । त्रिगुणमें रहने पर याने जप,तप,व्रत,योग,उपवास,

एकादशी,ब्रम्हा,विष्णू, महेश,वेद,गिता,शास्त्र,पुराण,भागवत इनमे की क्रिया करणीयाँ करने से सब कुछ होता है याने इन सभी मायावी भक्तियोंसे( )कर्म बनते और इसकारण बदले लेने-देने पड्ते याने बार-बार ८४००००० योनी में सुख-दु:ख भोगने के लिये आना पड्ता है और जब तुम त्रिगुण को छोड्कर मतलब स्वर्गलोक,मृत्युलोक,पाताललोक इनको छोड्के चौथे पद(सतस्वरुप आनंदपद)में चले जानेपर वहाँ कोई बदले लेने-देने नही पड्ते ।।।६२।।

हो स्वामीजी जब लग काया तब लग केणा ।। जब लग सुंणणा होई ।।
देह पड़या सुं सुणे न सीखे ।। सो तम शिरे संजोई ।।६३।।

हो स्वामीजी जब तक यह काया है तब तक बदला लेने-देने की रीत है । जब तक काया है तब तक ही सुनना होगा । यह देह पड जानेपर किसीका सुना भी नही जाता तथा कुछ सिखा भी नही जाता यह तुम अच्छी तरह से देखो ।।।६३।।

हे अबदू देह छतां नही आवे बासा ।। दिष्ट न देखे काई ।।
श्रवण साद सुणे नही ऊंची ।। कहो हंस कांहा जाई ।।६४।।

हे अबदू यह देह था तब तक तो पहुँचा नही और कुछ दृष्टी से देखा नही और कानों से

कितना भी उंचे स्वर से पुकारा तो भी सुना नही । अब बताओ वह हंस देह छुटने के बाद कहाँ जायेगा ।।।६४।।

अबदू निर्भे बासा काया मांही ।। जा को भेदज लीजे ।।
इन मे जाय मिले पद चोथे ।। जनम जूण नही दीजे ।।६५।।

आदि सतगुरु सुखरामजी महाराज अबदु से कहते है कि,हे अबदु,जिन्होंने इस मनुष्य देह में निर्भय पद=सतस्वरुप आनंदपद कि प्राप्ती की है । इसकारण यह संत इस काया में निर्भय होकर रहते है और इस शरीर में ही वह चौथे पद(सतस्वरुप आनंदपद)में जाकर मिलते है ऐसे संतो का तुम भेद लो । फिर ऐसे जो संत है वह चौथे पद में जानेपर पुन: ८४००००० योनी में जन्म नही लेते है ।।।६५।।

हो स्वामीजी निर्भे बासा काया मांही ।। बाहिर क्या छिटकावे ।।
बेरीं गांव जाहां नही जाणो ।। भे डर क्युं उपजावे ।।६६।।

हो स्वामीजी,जो काया में निर्भय होकर रहते है वे बाहर क्या छोडते। बाहर बैरीयों(काम,क्रोध, लोभ,मोह,मत्सर)के गाँव है वहाँ जावो मत । उनके गाँव जाकर भय याने डर क्यो उपजाना? ।।६।।

हे अबदू डर चाल्यां में बो गुण भारी ।। निरख निरख पग धरिजे ।।
काठा ठोकर लागे नाही ।। खाड न कूवे पडिजे ।।६७।।

हे अबधू डरकर चलणे में बहोत भारी गुण है । देख-देखकर पैर रखने से काटा व ठोकर नही लगेगा व गढ्ढे में वह कुएँ में नही पडेगा ।।।६७।।

अबदू डर चाले सो हात न आवे ।। लुलिया काठ न तूटे ।।
झीणि खेह चढे शिर ऊपर ।। ढल ढेकळ सब फूटे ।।६८।।

हे अबधु जो डरकर चलता है वह हाथ में याने धोके में नही आता । जैसे पेड भारी तुफान के कारण झुक जाते वे तुटते नही और बारीक धुल जो है वह सिरपर जाकर चढती है । और मिट्टी के बडे ढेले ये किसी के सिरपर न चढकर बडे बन के रहने के कारण पैरों से फुटते है । इसीप्रकार धुल के जैसा बारीक होकर जो रहते है वे लोगों के मस्तकपर चढते है और बडे मिट्टी के ढेले के जैसा बडा बनकर जो रहता है वे सभी के पैरों के निचे आकर ठोकर खाकर फुटते है ।।।६८।।

हो स्वामीजी फूट गया तब कहो क्या बिगड्या ।। तब ही झीणा होई ।।
च्यार दिना को व्रत मान हे ।। नेचे मिल मे सोई ।।६९।।

हो स्वामीजी,ये ढेले जब फुट गये तो उनका क्या बिघडा? वह बतावो । फूट जाने पे वे अपने आप धुल के जैसे बारीक हो जायेगे । ये चार दिनों का बडा बनकर रहना है परंतु कभी ना कभी निश्चित ही ये सभी जमिन के अन्दर मिल जायेगे ।।।६९।।

हो स्वामीजी च्यार दिनका आवण जावण ।। ब्रत मान सो ब्रते ।।

ने:चे ब्रम्ह एक ही स्वामी ।। पचे काम क्युं श्रते ।।७०।।

हो स्वामीजी चार दिनों का आना जाना है । यह बडा होकर रहना जो है वह चार दिन में मिटना है । जैसे जीव व ब्रम्ह एक ही है । फिर पचपचके जीवको ब्रम्ह बनाने में क्या अर्थ है? ।।७०।।

हे अबदू पचियां बिना छेह जुं दूरो ।। बोहो दिन दुखिया होई ।।
दारू बिना दरद बोहो दुखिया ।। कब लग भुक्ते कोई ।।७१।।

हे अबधू ब्रम्ह में मिलने का महाप्रलय का दिन बहोत दुर है । याने स्वयंम ही अपने आप ब्रम्ह में जाकर मिलने का समय बहूत लम्बा है । इसलिये पचकर पहले ही ब्रम्ह में जाकर मिल जाना चाहिये नही तो बहोत दिनों तक दु:ख भोगना पडेगा । जिसतरह दर्द होनेपर दवा नही ली तो बहोत दिनोंतक दु:खी रहना पडता । परंतू दवा ली तो अच्छा होने में बहोत दिन नही लगते । जल्दी ठिक हो जाते । इसीप्रकार ब्रम्ह में अपने आप जाकर मिलने में महाप्रलय तक कष्ट भोगने पडते ।।।७१।।

ज्यांहाँ नही धूप धाम नही छाया ।। ज्याहां हम देव निरंजन पाया ।।
सिव शक्ति मन माया नाही ।। ज्यां हां हम मिले निरंजण सांई ।।७२।।

जैसे इस होनकाल में धुप धाम है और छाया है वैसा सतस्वरुप आनंदब्रम्ह में धूप,धाम और छाया नही है और ऐसे जगहपर हमे आत्मा का देव निरंजन देव मिला । उस देश में जैसे माया में शिव है,शक्ती है,तथा मन है ऐसी माया वहाँ पे कुछ भी नही है । वहाँ पे जो निरंजन स्वामी है,उसे हम मिले । जो ध्वनीस्वरुप निरंजन देव है उससे जाके मिले ।।।७२।।

चंद अर सूर रेण नही तारा ।। ज्यांहाँ हे आसन इड्ग हमारा ।।
ब्रम्हा नही गायत्री संगा ।। धर्म राय नही काळज भंगा ।।७३।।

जैसे इस माया में चंद्र है,सुरज है और रात है ऐसा उस देश में नही है । ऐसी जगह पे हमारा अडीग आसन है । जैसे इस मायामें हम कभी पाताल मे जाते है तो कभी स्वर्ग लोक में जाते है । तो कभी बैकुंठ में जाते है । इसतरह से यहाँ पे हमारा आसन अड्गि नही रहता । वहाँ यहाँ के जैसा ब्रम्हा और उसकी साथ रहनेवाली गायत्री भी नही है और जैसे इस माया में कर्म भुगताने के लिये धर्मराय होता है,वैसा धर्मराय भी नही है । तथा वहाँ पे काल किसीका भंग नही करता ।।।७३।।

लिछमी बिस्न नही अवतारा ।। पवन चले नही जळ धारा ।।
गिर्वर पर्बत अष्ट न घाता ।। कल नही ब्रत रूंख नही पाता ।।७४।।

जैसा इस मायामें लक्ष्मी है,विष्णु है और अवतार है । वैसे वहाँपे नही है । वहाँ पे मरनेवाला वायू तथा मरनेवाला पानी नही है । माया में जैसे गिरवर याने पर्वत है,अष्ट धातू है वैसे वहाँ नही । जैसे मायामें कल्पवृक्ष है । वैसे कल्पवृक्ष वहाँ नही है याने यहाँ

जैसे कल्पवृक्ष के निचे जाओगे,कल्पना करोगे तब वह पूरी होगी । परंतु वहाँ ऐसे कल्पवृक्ष के निचे न जाते वह हंस जहाँ है या जहाँ भी जाएगा,वहाँ पे जो सुख उसे चाहिए वह उसे मिलेगा । और दुसरे वृक्ष के पत्ते भी वहाँ नही ।।।७४।।

चिंत्रावण पारस जांहाँ नाही ।। काम धेन नही दूजे मांही ।।
ज्यां नही हो रतना की माला ।। ना कोई पेरे पेरण वाला ।।७५।।

यहाँ जैसे चिंतामणी है,पारस है वैसे वहाँ नही परंतु चिंतामणी से मिलनेवाला सुख तथा पारस से मिलनेवाले सुख मिलते । जैसे स्वर्गमें कामधेनू ? यहाँ रत्नों की माला भी है और उसे पहननेवाले भी है परंतु वहाँ यहाँ जैसे रतनों की माला है उससे अधिक याने विज्ञानी रतनों की माला है ।।।७५।।

जांहाँ नही कुन्ड अमीरस धारा ।। कंवल सेंस दले नही बिस्तारा ।।
दिष्ट न मुष्ट आवे कोई नाही ।। जांहाँ हम मिले निरंजण साई ।।७६।।

वहाँ अमृत का कुण्ड भी नही है और वहाँ अमृत की धारा भी नही है । अमृतकी धारा से जो सुख मिलते है । उससे कैक अधिक सुख इस सतस्वरुप आनंदपद में हमे मिलते है ।।।७६।।

आठू पुरी परो जन नांई ।। सुभ नही असुभ न ब्यापे हे मांई ।।
पांच पचीसुं जान खेला ।। ज्यांहाँ सिरजण हे आप अकेला ।।७७।।

वहाँपे अष्टपुरीके प्रयोजन भी नही जैसे इस मायामें हमे शुभ कर्म और अशुभ कर्म लगते है । वैसे उस देशमें शुभ और अशुभ कर्म नही है । क्योंकि जिन्हे यह कर्म लगते है वो ५ आत्मा ही वहाँ पे नही है । जैसे इस माया में ५ तत्व(आकाश,वायू,अग्नी,जल,पृथ्वी)और २५ प्रकृती है । वैसे वहाँ पे ५ तत्व २५ प्रकृती नही है । इस माया में ५ तत्व के सुख विज्ञान के आधार से हमे मिलते है । उससे कई जादा सुख उस आनंदपद में हमे निरंजन से मिलेंगे । वहाँ पे वह सिरजन हार स्वयं अकेले ही है ।।।७७।।

ज्यांहां नही पांच पचीसुं कोई ।। मात पिता अेक नही होई ।।
च्यारूं खाण बाण बी नाई ।। ज्यांहा हम मिले निरंजण सांई ।।७८।।

जैसे इस माया में ५ तत्व और इन ५ तत्व के २५ प्रकृती है । वैसे वहाँ पे नही है । और वहाँ पे जिसतरह से इस होणकाल में पिता और माता है वैसे वहाँ माता और पिता नही है । और जिसतरहसे इस मायामें चार खाण(अंड्ज,उद्भिज,जरायुज,अंकुर)वहाँ पे नही है । क्योंकि वहाँ पे जन्मना ही नही है । और इस माया जैसे चार वाणी परा,पश्यंती,मध्यमा,बैखरी है । ऐसे चार वाणी वहाँपे नही है । वहाँपे विज्ञान वाणी है । यहाँ पे जो ५ तत्व,२५ प्रकृती,माया और ब्रम्ह, चार खाण,चार वाणी जिस निरंजन के आधार से है । ऐसे निरंजन परमात्मा से हम वहाँ पे जाकर मिले ।।।७८।।

सातूं समंद नदी नही नाला ।। जांहा नही मेघ ना ब्रसण वाला ।।

जमी बीज कोई बोवे नांई ।। ज्यांहा हम मिले निरंजण सांई ।।७९।।

जिस तरह से इस माया में सात समुंदर होते है,नदी नाले होते है । वैसे सात समुंदर और नदी वहाँ पे नही है । जैसे इस माया में मेघ है । और बरसात करनेवाला रहता है । वैसे मेघ और बरसात करनेवाला वहाँ पे नही है । जिस तरह से यहाँ पे जमिन में बीज बोते है । वैसे वहाँ पे जमिन में बीज बोते नही जाते । यहाँ पे इस नदी,नाले,मेघ,बरसात और जमिन में बीज बोते । इन सभी से जो सुख मिलते है । उनसे कई अधिक सुख वहाँ पे हमें मिलते है । इस निरंजन का जो निरंजन है ऐसे निरंजन से हम मिले ।।।७९।।

ज्यांहा नही रिष सिनका दिक कोई ।। नारद मुनि शंकर नही होई ।।
पारबती नही परम सनेहा ।। ज्यांहा हम मिले निरंजण देवा ।।८०।।

जैसे इस मायामें ऋषी है । और सनकादिक(सनक,सनन्दन,सनातन,सनत्कुमार)ये भी है। वैसे वहॉपे ऋषी और सनकादिक भी नही है । जिसतरह से इस माया में नारदमुनी और शंकर और पार्वती है । वैसे वहाँ पे नारद,शंकर और पार्वती नही है ।।।८०।।

ज्यां हां नही अेक सूं दोय कुहावे ।। ज्यां हा नही सुणे सुणण कूं जावे ।।
ऊंच नीच का ज्यांहा नही बेरा ।। करम कीट नही जम का घेरा ।।८१।।

जैसे इस माया में एक की अपेक्षा दुसरा बडा कहते है । और कोई सुनता है,तो कोई सुनने जाता है । वैसे वहाँपे एक ही अपेक्षा दुसर बडा कहते नही आता और कोई सुनता भी नही, कोई सुनाता भी नही । यहाँ पे जैसे उँच–नीच का भेद होता है,वैसा उँच–नीचका भेद वहाँ पे होता नही । सभी एक समान है । वहाँपे सभी अपने–अपने सुखमें मस्त रहते है । इस मायामें हंसके साथ के ५ आत्माको कर्म लगते है । और इस कर्मके कारण यमका घेरा रहता । ऐसे कर्म वहाँ पे लगते नही क्योंकि कर्म जिसे लगते है वह ५ आत्मा ही हंसके साथ नही है । और कर्म न होनेके कारण कर्मका किट भी हंसको लगता नही और यमका घेरा भी नही रहता । ।।८१।।

चवदे पुरब बेद नही कोई ।। ग्यानी पिन्डत अेक न होई ।।
कथनी बकनी ज्यां नही सेवा ।। ज्यांहा निरंजण देवस देवा ।।८२।।

वहाँ चौदह देव(१–मन का इन्द्र,२–बुद्धि का मन,३–चित्त का नारायण,४–अहंकार का शंकर,५–आँखोंका सुर्य,६–कानों का दिशा,७–जीभका वरूण,८–नाक का अश्विनी,९–पैरों का आसीत,१०–त्वचा का वायु,११–शिष्ण का प्रजापती,१२–गुदा का यम,१३–वाणी का वाक,१४–शब्द का उपेन्द्रीय ।)ये भी नही है । और वहाँ कोई भी वेद नही है । और वहाँ कोई भी वेद नही है । और वहाँ कोई ज्ञानी या पंडित एक भी नही है । वहाँ कथनी(कथा कहने वाले)व बकनी(बकनेवाले)भी नही । और वहाँ किसी की सेवा भी नही है । वहाँ निरंजन देव सदैव(हमेशा)रहता है । ।। ८२ ।।

ज्यांहा नही कथा भागवत कोई ।। गीता पुराण अेक नही होई ।।

सिध साधक ज्यांहा गुरू नही चेला ।। ज्यां जन साध निरंजण भेला ।।८३।।

जिसतरह से इस माया में कथा होती है । भागवत और गीता,अठ्ठराह पुराण होते है । वैसे वहाँ पे माया से(५२ अक्षरोसे)बनी हुई मायाकी कथा,वेद,शास्त्र,पुराण और भागवत यह कोई भी नही है । वहाँ ५२ अक्षर जिसके आधारपर है । जो अक्षरमें आता नही,वह ने:अंछर ध्वनी है । और इस माया में माया के पर्चे चमत्कार करनेवाले सिद्ध और साधक है । वैसे वहाँ पे नही है । जैसे इस माया में गुरु है,शिष्य है वैसे वहाँ पे कोई गुरु और शिष्य यह कोई भी नही है । वहाँ पे कोई किसीका गुरु नही और कोई किसीका शिष्य नही । सभी एक समान है । वहाँ पे सतस्वरुपी साधू(संत)है । जिनके पुरे रोम-रोममें वह निरंजन परमात्मा है । ऐसे निरंजन में साधू मिले हुए है ।।।८३।।

ज्युं जल मे जल बून्द समाई ।। नदियां चली समंद मे आई ।।
आड़ो पट न राखो कोई ।। यूं जन मिल्या ब्रम्ह में सोई ।।८४।।

जैसे पानीमें पानीकी बूँद मिलती है,तब पानी और पानीके बूँदमें कोई पड्दा नही रहता याने पानी और पानीकी बूँद यह अलग-अलग नही रहते । और जैसे नदियाँ चलकर समुद्रमें मिलती है । तब उन नदियों और समुद्रमें मिलती है । तब उन नदियों और समुद्र इन दोनोंके बीच कोई भी आड़ा पट नही रहता है,वह एक जैसे हो जाते है । वह अलग-अलग नही रह सकते । उसी तरहसे जब कोई साधू निरंजनमें जाकर मिलता है याने इस मनुष्य देहमें सतस्वरुप आनंदपदकी प्राप्ती कर लेता है तब वह साधू याने की संत और निरंजन(परमात्मा)इनमें कोई आड़ा पड्दा कोई नही रख सकता । याने की वह एक हो जाते है । इस तरह से सभी जन संत सतस्वरुप पद(ब्रम्ह)में जाकर मिलते है ।।।८४।।

जन सुखराम धिन गुरू देवा ।। गुरू प्रताप मिले ओ भेवा ।।
धिन सुखराम पद तुम पाया ।। तीन लोक चोथे पद आया ।।८५।।

आदि सतगुरु सुखरामजी महाराज कहते है कि,वे गुरु धन्य है कि उस गुरु के प्रताप से यह ऐसा भेद मिलता है । याने जो ३ लोक १४ भुवन,३ ब्रम्ह के १३ लोक इनके आगे का जो निरंजन पद है । जहाँ ८४,००,००० योनी का दु:ख नही,गर्भ का दु:ख नही,यम की त्रास नही, बुढापे का दु:ख नही,जहाँ पे सिर्फ सुख ही सुख है,वो भी बिना मेहनत के फुकट में,आज्ञाकारी सुख है । ऐसे सतस्वरुप आनंदपद में मिलवाया वे गुरु धन्य है ।।।८५।।

मन की चोकी हे जुग मांई ।। निर्भे प्राण आद घर जांई ।।
देह लग मन की झांई आवे ।। ब्रम्ह साद घर अेक कुवावे ।।८६।।

हंस के साथ आदि से मन है । मन को पाँच विषयों के सुखों की सदा चाहणा होती है । मन को जो सुख चाहिए वह जगत में याने त्रिगुणी माया में ही मिलते है । जब तक हंस जगत में याने होणकाल में रहता है,तब तक मायावी योगी ने कितना भी प्रयास किया की

त्रिगुणी मायाके सुख नही लुंगा तो भी उसका मन बार-बार उन सुखोंके लिए हंस को तरसाएगा । अंतीम हंस थककर काल उसे दबोचेगा । इसकारण प्राण मायामें निर्भय नही रह पाता । जब हंस(निर्भय)आद घर जाता है । तब उस जीवका मन निकल जाता है । और वह साधू ब्रम्ह बन जाता है । यह साधू का हंस जो ब्रम्ह है वह मन तथा ५ आत्मा के माया से मुक्त हो जाता है,फिर वह आवागमन में नही आता । इसकारण काल का डर खतम हो जाता है । हंस निर्भय बन जाता है । यह स्थिती उसकी आद घरमें होती है । आद घरमें निरंजन साई यह भी ब्रम्ह है,अमर है । तथा गया हुवा प्राण भी ब्रम्ह है,अमर है । ऐसे साधु और सतस्वरुप ब्रम्ह एक स्वभाव के याने अमर स्वभाव के कहलाए जाते है ।।।८६।।

निरभे बास किया घर वांही ।। साध ब्रम्ह के अन्तर नांही ।।
जुग मे निर्भे भे नही कोई ।। जे जन मिल्या सुन मे सोई ।।८७।।

आद घर यह निर्भय वास है । जहाँ काल नही है । साधु और सतस्वरुप ब्रम्हमें अंतर नही है । साधु याने प्राण सतस्वरुप याने अखंड ध्वनी । यह ध्वनी साधूके प्राणमे पूर्णता रहती । इसलिए साधु में और सतस्वरुप में अंतर नही रहता । मायाके देशमें त्रिगुणी माया यह मन में तथा ५ आत्मा में पुर्णत: रहती है । परंतु आत्मा में नही रहती । इसकारण यहाँ जीव में व माया में अंतर रहता । माया को काल खाता,इसलिए जीव को काल का भय सदा रहता । इसकारण जीव जगतमें निर्भय कभी नही बनता । जो संत सुन्न याने अखंड ध्वनीमें मिले वे ही सिर्फ निर्भय होते है ।।।८७।।

महा सुन्न मे जाय मिलावे ।। ब्रम्ह समायर अेक कुवावे ।।
जीव सीव का मेळा होई ।। ज्हां हा अेक नही दूजा कोई ।।८८।।

महासुन्न याने अखंडित ध्वनीमें मिलने पे अखंडित ध्वनी ब्रम्ह और प्राण ब्रम्ह ये एक हो जाते है । महासुन्न में जीव और शीव का मेला होता है । मतलब जीव और शीव याने सतस्वरुप साई एक हो जाते है । हंसके साथ जो ५ आत्मा और मन है, उनमे है । हंस में सतस्वरुप पहले से है । हंस और सतस्वरुप पहले से ही अलग नही है । परंतू मन और ५ आत्मा के कारण हंस त्रिगुणी माया तथा काल के वश हो जाता है । हंस की ५ आत्मा निकल जाती तथा मन निकल जाता है । इसलिए हंससे त्रिगुणी माया अलग हो जाती । त्रिगुणी माया छुट जाने के कारन होणकाल ब्रम्ह हंस से छुट जाता । इसप्रकार ५ आत्मा,मन तथा त्रिगुणी माया यह तीन माया व होणकाल ब्रम्ह हंस से विभक्त हो जाते । यह सभी निकल जाने के कारण हंसके साथ पहलेसे ही जो था । वह सतशब्द सिर्फ बना रहता । सतशब्द यह पहले से ही हंस के उर में ही था

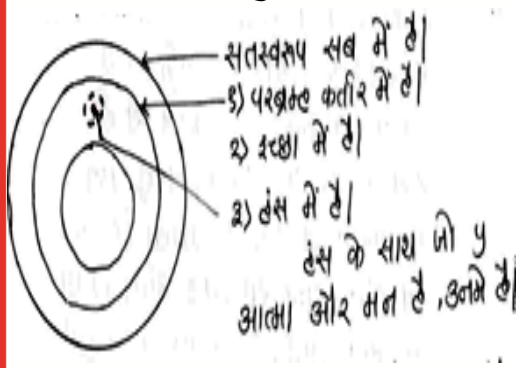

। परंतू मन,५ आत्मा व त्रिगुणी मायाके कारण जो अंतर पडा था,वह अंतर खतम हो जाता । मन,५ आत्मा व त्रिगुणी माया के कारण हंस का साहेब का एक जीवपणा नही बनता था । वह एक जीवपणा आद घर पहुँचते ही बन जाता । वहाँ एक याने सिर्फ सतस्वरुप ब्रम्ह और हंस ब्रम्ह जैसे समुद्र में नमक घुलने पे एक जीवता आती वैसे स्थिती में रहते ।।।८८।।

छाया मज समाय समावे ।। जो देखे सो ब्रिछ बतावे ।।
छाया जीव रहे नही कोई ।। उलट उदे सिर आवे सोई ।।८९।।

जैसे पेड की छाया मीट जाने पे वृक्ष ही वृक्ष दिखता है । वैसे ही हंस का जीवपणा मीट जाने पे हंस मायावी न दिखते हुए ब्रम्ह ही ब्रम्ह दिखता ।।।८९।।

ज्यूं ज्यूं सुरज ऊँचा चढ हे ।। ज्यूँ ज्यूँ छाया घटती पड हे ।।
जब सूरज चल मज सिर आया ।। तब सब छायाँ नाम मिटाया ।।९०।।

जैसे जैसे सुरज उंचा चढता है । वैसे वैसे वृक्ष की छाया घटती है व जब सुरज वृक्ष के सिरपर पुरा आता है तब सिर्फ वृक्ष दिखता है । छाया दिखती नही । इसप्रकार छायाका अस्तीत्व मीट जाता है ।।।९०।।

यूं ग्यान उदे रसणा लिव लागे ।। बंक नाळ की बारी जागे ।।
सुरत शब्द ऊँचा चल आया ।। छायाँ घटे ज्युँ जीव घटाया ।।९१।।

वैसे ही सतस्वरुप ज्ञान हंसको समझ जानेसे वह रसनासे लीव लगाकर स्मरण करता उस कारण सतशब्द हंसमें प्रगट होता । सतशब्द प्रगट होनेपे बकंनालका रास्ता खुलता है । शब्दके संग सुरतके आधारसे हंस निजघर आता है । वहाँ उसका जीवपणा पुरा मीट जाता है ।।९१।।

कंवल सेंस दल उन सिर आया ।। जीव पणा सब खोज मिटाया ।।
सेजां बास जक्त के माही ।। ने:चे घर हम कीया वांही ।।९२।।

हजार पाकली का कमल पार करता है,तब तक जीवपणा पुरा खतम हो जाता है । ऐसा साधु निश्चल घर याने अगम घर पाने पे जगत में निश्चल बन जाता है । वह जगत मे सहज वृती मे जीता है । उसकी त्रिगुणी माया के सुखोंकी चाहणा खतम हो जाती है । वह अपने प्रालब्ध कर्म पुरे करने के प्रतीक्षा में रहता है ।।।९२।।

जब सुखराम मन मे आवे ।। तब ही निजघर जाय समावे ।।
सन्तो माया ब्रम्ह तांहा अे दोई ।। ने:चे ब्रम्ह अेक ही होई ।।९३।।

ऐसे साधु जगत में याने संसार में सहज रहते है । तथा जब वे चाहते है तब निजघर याने सतस्वरुप में समाधी में समाते है । जगत में माया तथा ब्रम्ह दो है । और निजघर याने सतस्वरुप में सिर्फ सतस्वरुप ब्रम्ह ही ब्रम्ह है । शरीर से सभी संसार का कार्य करते है । तथा उनका हंस दसवेद्वार में जहाँ माया नही तथा काल नही ऐसे जगह सतस्वरुप ब्रम्ह में

समाते है ।।।९३।।

ज्युं तरवर की छायाँ क्रावे ।। बिरछ अेक पण दोय दिखावे ।।
पंछी भूल गया सुख मांही ।। छांयाँ तले बिरछ बन नांही ।।९४।।

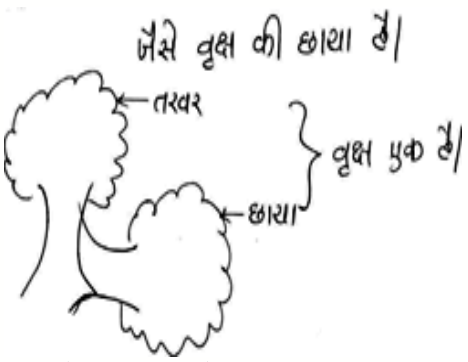

परंतू वृक्ष स्वयं तथा वृक्ष की छाया जो वृक्ष ही दिखता है । ऐसे दो दिखते है । पंछी वृक्ष की छायामें भूल जाता है । जब की वृक्षकी छाया यह वृक्ष नही है । यह नश्वर है,यह सुरज वृक्ष के सर पे आने पे खतम हो जाती है । परंतु पंछी अज्ञानी होने कारण वृक्ष के छाया को सत्य मानकर उसी में रमता है । इसप्रकार जीव माया को सत्य मानकर उसमे रमता है । माया यह महाप्रलय में खतम हो जाती है ।।।९४।।

छाँया छीन बिरछ हे आछो ।। माया झूट ब्रम्ह हे साचो ।।
यूं अपणो सब श्रुप भुलायो ।। ज्युं चल स्वान महल मे आयो ।।९५।।

जैसे छाया यह क्षीण होनेवाली है । खतम होनेवाली है । ऐसे ही माया यह खतम होनेवाली है । और ब्रम्ह सदा ही रहनेवाला है ।।।९५।।

कांच महल मे आपी दीसे ।। आपी भुषे आपही रीसे ।।
ज्यूं ज्यूं तामस बहो बिध लावे ।। ज्यूं उनमे बोहो रोस दिखावे ।।९६।।

जीव को मैं ब्रम्ह हुँ,माया नही यह कैसे समझता । इसपे आदि सतगुरु सुखरामजी महाराजने उदाहरण दिया है:–स्वान काच महलमें आता । काच महलमें सभी ओर उसकी छबी दिखती । कुत्ते का स्वभाव है,उसे सामने कुत्ता दिखा तो वह उस कुत्ते पे भुंक्ता रहता,भुक–भुकके रिस जताता है,क्रोध जताता है । काच महल गए हुए कुत्तेके सामने दुजा असली कुत्ता नही है । उसके सामने उसकी छबी दिख रही है । उस छबीको असली कुत्ता समझके उस छबी पे भुक्ते रहता । जैसे यह भुक्ता वैसे ही छबी भी भुक्ते दिखती । तो उसे दिखता की दुजा कुत्ता भी मेरे उपर भुक रहा है । क्रोध कर रहा है,रिस कर रहा है ।।।९६।।

भुस्तां भुस्तां सब दिन होई ।। ना कोई लड्यो मुवो नई कोई ।।
समज्यां श्वान पच पच हाऱ्यो ।। अपनो सरूप सु मांय बिचाऱ्यो ।।९७।।

ऐसे सोचते भुकने–भुकने में दिनपे दिन बिते जाते है । असली कुत्ते आपसमें भुक्ते तो लढते, लढनेमें मार खाके मर जाते परंतू दुजा असली कुत्ता नही है । वह छबी है । इसकारण असली कुत्ता छबी को देखकर पच–पचकरके भुक्ते रहा तो भी आपस में लढाई होती नही । तब उसे यह समझ आती की यह असली कुत्ता नही है । यह मेरी छबी है । मेरा असली रुप मैं ही हुँ । ऐसा वह पहचानता और वह सुखी हो जाता । ऐसे ही हंस मन और ५ आत्माके सुखोंके लिए पचते रहता । पचते–पचते उसकी तृप्ती होती नही । तो

तृप्त सुखोंका धाम याने पद चिनता । जब तृप्त सुखों का पद चिनता,तब उस हंस को समझता की मैं ब्रम्ह हुँ,मैं माया नही हुँ । ।।९७।।

जब लग श्रूप न चीने कोई ।। तब लग सुखीया वे नई लोई ।।

----------।।----------।।९८।।

ऐसा मैं ब्रम्ह हुँ । माया नही हुँ । यह हंस खुद का सच्चा स्वरुप नही चिनता,तब तक वह हंस सुखी नही होता ।।।९८।।

तुम हम ब्रम्ह ओर नई कोई ।। धाम पहुँच्या हम जान्या ।।
जन सुखराम नदी जळ अेकी ।। नांव घाट ठेराण्या ।।९९।।

जैसे नदी का जल तथा घागर,लोटा में भरा हुवा उसी नदी का जल एक है । परंतू नाम नदी, लोटा,घागर ऐसे है। ऐसा ही पारब्रम्ह में जीव तथा मनुष्य देह,कुत्ते,बैल,गधे सब में की जीव एक ही है । परंतु माया के अलग-अलग घाट बनने से सभी जीव एक ब्रम्ह होते हुए भी अलग दिखाई देते है ।।।९९।।

तुम हम ब्रम्ह ओर नई कोई ।। भ्रम सुं दोय दिखाया ।।
जन सुखराम मिटे सिध सिको ।। द्रब रोकड़ा होय आया ।।१००।।

इसप्रकार अबदु तुम और हम जीव ब्रम्ह है । परंतु माया के देह दो अलग-अलग दिखने से यह भ्रम हो गया की मैं माया अलग हुँ और तुम माया अलग है । जैसे चांदी और चांदी का सिक्का एक ही चांदी है । परंतु चांदी और चांदी का सिक्का अलग-अलग दिखता है । ऐसे ही पारब्रम्ह जीव और देह धारण किया हुवा जीव अलग-अलग समझते,परंतु एक ही है । जब सिक्का मिट जाता है,तो सिक्के को कोई सिक्का नही कहते चांदी कहते है । ऐसे ही प्राण की माया खतम होने पे प्राण को ब्रम्ह ही कहते है । ब्रम्ह से अलग नही कहते ।।।१००।।

तुम हम ब्रम्ह ओर नही कोई ।। ग्यान बमेक बिचारो ।।
जन सुखराम तराँ ज्युं जळ हे ।। संमद भऱ्यो सब सारो ।।१०१।।

अरे अबदु तुम और हम ब्रम्ह है,माया नही है । कैवल्य ज्ञान विवेक से जागो । जैसे समुद्र का जल तथा समुद्र पे चलनेवाली लहरों का जल एक ही होता है । परंतु समुद्र तथा समुद्र की लहरे अलग-अलग दिखती है । वैसे ही पारब्रम्ह का जीव और माया में आया हुवा जीवब्रम्ह अलग-अलग दिखता है ।।।१०१।।

तुम हम ब्रम्ह ओर नही कोई ।। भ्रम लूट ज्युं धुंवो ।।
जन सुखराम ग्यान चट देख्यां ।। कुंण जनम्यो कुंण मुंवो ।।१०२।।

अरे अबदु तुम और हम ब्रम्ह है । ब्रम्ह के सिवा कुछ नही है । यह ज्ञान न होनेकारण जीव भ्रम में पड गया है । आदि सतगुरु सुखरामजी महाराज कहते है,जब हमने सतस्वरुप विज्ञान ज्ञान चल के देखा मतलब बकंनाल के रास्ते से अमरलोक पाकर देखा तो समजा

जीवब्रम्ह तो अमर है । वह मरता नही तथा जनमता नही । फिर मरता कौन और जनमता कौन इसका अर्थ समझा की माया मरती और माया जनमती ।।।१०२।।

दोहा ।।

ब्रम्ह आद मध अन्त ही ।। घटे बधे कुछ नाय ।।
जन सुखराम घाट सो भांगे ।। मूळ रती नाही जाय ।।१०३।।

जीवब्रम्ह तो आदि में जैसा था,वैसा ही वह मध्य में था और अंत में भी वैसा ही रहेगा । मतलब कल भूतमें जैसा था,वैसाही आज वर्तमान में है । तथा वैसा ही कल भविष्यमें रहेगा । वह घटता नही तथा बढता नही । जो घटता या बढता या भंग हो जाता वह मायाका घाट है । वह जीवब्रम्ह नही है । जीवब्रम्ह में रतीभर का भी फरक नही होता । इसप्रकार तुम और हम ब्रम्ह है,तुम और हम माया नही है । आदि सतगुरु सुखरामजी महाराज कहते है यह बकंनाल के रास्तेसे सतशब्द के आधार से आद घरपे पहुँचनेपे ही समझता है । तब तक नही समझता । इसकारण हंस त्रिगुणी मायामें रचमचा रहता और कालके महादु:ख भोगते रहता ।।।१०३।।

।। इति अबदुरो संवाद संपूरण ।।